International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

रश्मिरथी - आधुनिक राष्ट्रीय चेतना और कर्ण के उदात्त चरित्र का महाकाव्यात्मक अनुशीलन

डॉ. वंदना

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी, राजकीय महिला महाविद्यालय बदायूं

हिंदी साहित्य के इतिहास में रामधारी सिंह 'दिनकर' का आविर्भाव एक ऐसी प्रदीप्त घटना है, जिसने कविता को छायावाद की वायवीयता और वैयक्तिकता के सूक्ष्म आवरण से निकालकर राष्ट्रीयता की कठोर भूमि पर प्रतिष्ठित किया। छायावादोत्तर युग की यह संक्रांति बेला भारतीय स्वाधीनता संग्राम के उत्कर्ष और स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण की संधि रेखा पर अवस्थित है। जहाँ एक ओर जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा जैसे छायावादी कवि प्रकृति के रहस्यात्मक सौंदर्य और अंतर्मुखी वेदना के गीतों में लीन थे वहीं दिनकर ने 'मिट्टी की ओर' का आह्वान करते हुए उस काव्यधारा का नेतृत्व किया जिसमें भारतीय मिट्टी की सोंधी गंध और जन-आकांक्षाओं का सिंहनाद गूँजता है । छायावादी कविता में जहाँ रहस्यवाद और विरह के गीत गाए जा रहे थे वहीं दिनकर की वाणी में राष्ट्र प्रेम का स्वर गूंज रहा था ।

झंकझोरो, झंकझोरो महान सुप्तों को,
टेरो, टेरो चाणक्य- चंद्रगुप्तों को।
विक्रमी तेज, असि की उद्याम प्रभाव को,
राणा प्रताप, गोविंद, शिव सरजा को।
वैराग्यवीर, बांदा फ़क़ीर भाई को,
टेरो, टेरो माता लक्ष्मीबाई को।

अपने साहित्य में दिनकर ने देश की तत्कालीन परिस्थितियों को उसके मूल रूप में जांचा परखा है उन्होंने भारतीय संस्कृति के गरिमामय राष्ट्रीय पत्रों की तलाश में अपना संपूर्ण जीवन खपा दिया है। उनके साहित्य में जीवन में पराधीनता की पीड़ा संत्रास और युगीन परिस्थितियों में विवश मानव मन की घुटन को साफ-साफ अनुभव किया जा सकता है दिनकर का समस्त काव्य युगीन चेतना और राष्ट्रबोध की परिधि है। यह शोध पत्र दिनकर की कालजयी कृति 'रश्मिरथी' के आलोक में कर्ण के चरित्र, सामाजिक न्याय की अवधारणा और काव्य के दार्शनिक पक्षों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

रामधारी सिंह दिनकर का व्यक्तिगत जीवन निरंतर संघर्षों की एक ज्वलंत गाथा रहा है जिसने उनके काव्य को वह 'वीर रस' और 'ओज' प्रदान किया जो अन्यत्र दुर्लभ है। 23 सितम्बर 1908 को मुंगेर जिले के सिमरिया ग्राम में एक साधारण किसान परिवार में जन्मे दिनकर का प्रारंभिक जीवन घोर अभावों में व्यतीत हुआ । उनके पिता बाबू रवि सिंह की मृत्यु तब हुई जब दिनकर मात्र दो वर्ष के थे जिसके कारण उनके परिवार को ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था की सीमाओं और निर्धनता के बीच संघर्ष करना पड़ा यह संघर्ष ही था जिसने उनके व्यक्तित्व को वह दृढ़ता प्रदान की जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य 'हुंकार' और 'कुरुक्षेत्र' जैसे ग्रंथों के रूप में हुई।

दिनकर ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी "जिन्दगी आरम्भ से अंत तक संघर्षों की कड़ी बन गयी है" । एक साधारण हाईस्कूल के हेडमास्टर के पद से लेकर भारत सरकार के सलाहकार और राज्यसभा के सदस्य बनने तक का उनका सफर भारतीय साहित्य के इतिहास में एक प्रेरणास्पद अध्याय है । उनके काव्य में निहित राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना केवल किताबी ज्ञान नहीं बल्कि उनके द्वारा निकट से अनुभव की गई जीवन की कटुता और पीड़ा का परिणाम है । दिनकर का उदय उस धारा में हुआ जो भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी से होकर बहती आ रही थी। छायावाद की अतिकल्पनाशीलता और वायवीयता पर प्रहार करते हुए दिनकर ने कविता को जन-जीवन से जोड़ने का कार्य किया । आलोचकों ने छायावादी कविता को 'निराशा की कविता' कहा क्योंकि जब जनता स्वाधीनता संग्राम में जूझ रही थी तब छायावादी कवि कल्पना के लोक में विचलोल कर रहे थे । उस समय में दिनकर की धमनियों में संस्कृत के कालिदास और बंगला के रवीन्द्र के साथ-साथ नज़रुल इस्लाम का क्रांतिकारी स्वर प्रवाहित हो रहा था ।

सन् 1952 में रचित 'रश्मिरथी' दिनकर के काव्य-दर्शन का वह शिखर है जहाँ वे पौराणिक आख्यानों के माध्यम से आधुनिक युग की विसंगतियों का समाधान खोजते हैं । 'रश्मिरथी' का अर्थ है - वह व्यक्ति जिसका रथ रश्मि (पुण्य का प्रकाश) का हो । इस काव्य का नायक महाभारत का कर्ण है, जो अपनी योग्यता, वीरता और दानशीलता के बावजूद समाज द्वारा निरंतर उपेक्षित और अपमानित किया गया। दिनकर के अनुसार यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है और कर्ण के चरित्र का उद्धार इस बात का प्रमाण है कि समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है।

***तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतलाके*,**
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
***हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक*,**
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

दिनकर ने 'रश्मिरथी' की भूमिका में स्पष्ट रूप से नयी भावना की स्थापना पर बल दिया है। वे लिखते हैं कि 'कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है" । कर्ण का चरित्र उस आधुनिक मनुष्य का प्रतीक है जो अपनी अधीनस्थ स्थिति से ऊपर उठकर अपनी प्रतिभा के बल पर इतिहास में अपनी जगह बनाना चाहता है।
कर्ण का जीवन संघर्ष आधुनिक 'योग्यतावाद' और 'जातिवाद' के बीच के भीषण द्वंद्व को दर्शाता है। जहाँ पांडव और कौरव राजकुमार अपने जन्म और उच्च कुल के कारण विशेषाधिकार प्राप्त थे वहीं कर्ण को पग-पग पर अपने 'सूत-पुत्र' होने का दंश झेलना पड़ा। दिनकर ने इस महाकाव्य में कर्ण को छह प्रमुख परीक्षाओं के माध्यम से परखा है जहाँ वह प्रत्येक स्तर पर अपनी नैतिकता और सामर्थ्य को सिद्ध करता है।
रश्मिरथी का प्रारंभ कर्ण के रंगभूमि में अवतरण के साथ होता है, जहाँ वर्ग संघर्ष और सामाजिक प्रतिष्ठा की चुनौती उसके सामने स्पष्ट रूप से खड़ी है । पांडवों और कौरवों के शस्त्र-कौशल प्रदर्शन के बीच कर्ण का प्रवेश एक अनाधिकार चेष्टा माना जाता है क्योंकि वह राजकुल का नहीं था। जब कृपाचार्य द्वारा उसकी जाति पूछी जाती है तो कर्ण का उत्तर एक तेजस्वी युवक के आत्म-गौरव और विद्रोह का स्वर बन जाता है ।
कर्ण स्पष्ट रूप से कहता है । वह हीन मूल की चिंता किए बिना अपने पुरुषार्थ और बाहुबल को ही अपनी वास्तविक जाति मानता है।

***जाति हाय री जाति कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला*,**
कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोला।
***जाति- जाति रटते जिनकी पूँजी केवल पाखंड*,**
मैं क्या जानूँ जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदंड।

यह पंक्तियाँ न केवल कर्ण के क्रोध को व्यक्त करती हैं, बल्कि तत्कालीन सामंती व्यवस्था के प्रति दिनकर के अपने आक्रोश का भी प्रतिनिधित्व करती हैं। कर्ण यहाँ सिद्ध करता है कि इतिहास की लीक वे वीर ही खींचते हैं जिनमें अपने सामर्थ्य पर अटूट विश्वास होता है। इस प्रथम परीक्षा में कर्ण ने जन्म आधारित श्रेष्ठता को कर्म आधारित महानता से पराजित किया।
कर्ण के जीवन की दूसरी कठोर परीक्षा परशुराम के आश्रम में होती है। द्रोणाचार्य द्वारा 'सूत-पुत्र' कहकर शिक्षा से वंचित किए जाने के बाद, कर्ण ब्राह्मण का वेश धरकर परशुराम की शरण में जाता है । यहाँ उसके मन में एक गहरा द्वंद्व है - क्या ज्ञान प्राप्ति के लिए किया गया असत्य भाषण नैतिक है? दिनकर के अनुसार,द्रोणाचार्य के अन्याय ने ही कर्ण को इस मिथ्याचरण के लिए विवश किया था ।

आश्रम में कर्ण की गुरुभक्ति और सहनशीलता अद्वितीय थी। जब एक वज्रकीट उसकी जंघा को भेदने लगा तब भी उसने अपने गुरु की निद्रा भंग न हो इस उद्देश्य से पीड़ा को मौन रहकर सहा । रक्त की धार देखकर परशुराम जान जाते हैं कि इतनी अदम्य सहनशीलता केवल एक क्षत्रिय में ही हो सकती है क्रोधवश परशुराम उसे शाप देते हैं कि अंत समय में वह अपनी विद्या भूल जाएगा।

कर्ण का यह शाप उसके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है लेकिन दिनकर ने इस प्रसंग को एक उच्च दार्शनिक आयाम दिया है। कर्ण का शाप स्वीकार करना और गुरु के प्रति निष्ठा बनाए रखना उसे एक 'त्रासद नायक' की श्रेणी में खड़ा करता है । वह अपनी विद्या का चरम तेज खो देता है परंतु उसकी नैतिक गरिमा अक्षुण्ण रहती है।

कुरुक्षेत्र के युद्ध से पूर्व भगवान श्रीकृष्ण कर्ण को पांडवों के पक्ष में लाने का प्रयास करते हैं। वे उसे उसके जन्म का सत्य बताते हैं कि वह कुंती का ज्येष्ठ पुत्र और पांडवों का बड़ा भाई है । श्रीकृष्ण उसे साम्राज्य का प्रलोभन देते हैं और पांडवों के साथ मिलकर धर्म की स्थापना का आग्रह करते हैं। यह कर्ण के जीवन की सबसे बड़ी भावनात्मक और नैतिक परीक्षा थी ।एक ओर राज्य, मान-प्रतिष्ठा और अपने सगे भाइयों का साथ था तो दूसरी ओर उस दुर्योधन की मैत्री थी जिसने उसे उस समय अपनाया था जब पूरी दुनिया ने उसे दुत्कारा था। कर्ण श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को बड़ी विनम्रता और दृढ़ता से अस्वीकार कर देता है ।

कुरुपति का मेरे रोम रोम पर ऋण है,
आसान न होना उससे कभी उऋण है।
हल किया अगर तो क्या जग में यश लूंगा,
प्राण ही नहीं, तो और उसे क्या दूंगा।

उसके लिए मित्रता केवल एक संबंध नहीं बल्कि एक अनमोल रतन है जिसे धन या साम्राज्य से नहीं तोला जा सकता।कर्ण की यह निष्ठा उसे महाभारत के अन्य पात्रों से श्रेष्ठ बनाती है। वह जानता है कि दुर्योधन का पक्ष अधर्म का है और उसकी पराजय निश्चित है, फिर भी वह अपने मित्र को संकट के समय छोड़ना नीचता मानता है । यहाँ कर्ण का चरित्र एक 'उदात्त' नायक के रूप में उभरता है जो अपनी नियति को जानते हुए भी अपने सिद्धांतों पर अडिग रहता है।

कर्ण की दानवीरता मानवता के इतिहास में एक मानदंड स्थापित करती है। जब देवराज इंद्र, अर्जुन की रक्षा हेतु ब्राह्मण का भेष धरकर कर्ण से उसके अभेद्य कवच और कुंडल दान में माँगने आते हैं तो कर्ण को सूर्यदेव पहले ही सचेत कर चुके थे । कर्ण जानता था कि कवच-कुंडल के बिना उसकी मृत्यु निश्चित है फिर भी वह अपनी 'दानवीर' की प्रतिज्ञा से विचलित नहीं होता ।कर्ण का यह दान 'प्राण-दान' से भी बढ़कर था। वह कहता है कि वह शिवि और दधीचि जैसी महान विभूतियों की परंपरा को कलंकित नहीं करेगा । दान के इस प्रसंग को दिनकर ने चरित्र-विकास के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाया है। कर्ण का यह दान छद्मवेषी इंद्र के प्रति उसकी उदारता और अपनी मृत्यु के प्रति निर्भयता का प्रमाण है। इंद्र के समक्ष कर्ण की वीरता और सच्चाई उसे पराजय में भी विजयी सिद्ध करती है। वह कहता है

अतः आपने जो मांगा है दान वही में दूंगा,
शिवि दीचि की पंक्ति छोड़कर जग में अपयश न लूंगा।
पर कहता हूं मुझे बना निस्त्राण छोड़ते हैं क्यों?
कवच और कुंडल लेकर के प्राण छोड़ते हैं क्यों?

इस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर कर्ण ने सिद्ध किया कि भौतिक सुरक्षा से अधिक महत्वपूर्ण मनुष्य का चरित्र और उसका त्याग होता है।युद्ध के भीषण वातावरण के बीच कुंती का कर्ण के पास आना और उसे अपने वात्सल्य प्रेम के पाश में बांधने का प्रयास करना कर्ण के लिए एक अत्यंत मर्मस्पर्शी परीक्षा थी । कुंती का यह आगमन प्रेम के कारण कम और अपने अन्य पुत्रों की विजय कामना के कारण अधिक था । कुंती ने मनोवैज्ञानिक रूप से कर्ण को द्रवित करने का प्रयास किया यह जानते हुए कि कर्ण अपनी माता के प्रति अत्यंत संवेदनशील हो सकता है ।

कुंती के आँसुओं और वचनों के बावजूद कर्ण अपनी मैत्री भावना से नहीं डिगा। उसने दुर्योधन का पक्ष छोड़कर पांडवों के साथ जाना स्वीकार नहीं किया ।अंततः कर्ण ने अपनी माँ को खाली हाथ नहीं भेजा। उसने अपनी दानशीलता का परिचय देते हुए वचन दिया कि वह अर्जुन को छोड़कर किसी अन्य पांडव का वध नहीं करेगा । इस प्रकार कुंती के पाँच पुत्र सदैव जीवित रहेंगे। यहाँ कर्ण की ममता और कर्तव्य के बीच का संघर्ष उसे एक अत्यंत जटिल और मानवीय पात्र के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

युद्ध भूमि में कर्ण की अंतिम परीक्षा उस समय होती है जब नागराज अश्वसेन उसके तरकश में आकर छिप जाता है और अर्जुन से अपना प्रतिशोध लेने के लिए कर्ण से उसे बाण के रूप में चलाने का आग्रह करता है । अश्वसेन का प्रस्ताव कर्ण के लिए विजय पाने का एक सुलभ मार्ग था, लेकिन कर्ण ने इसे अपनी मानवीय गरिमा के विरुद्ध माना ।कर्ण अश्वसेन को धिक्कारते हुए कहता है कि वह मानव जाति का प्रतीक है और साँपों की सहायता लेकर अपनी जाति का संहार करना घोर नीच कर्म है । वह आने वाली मानवता को क्या मुँह दिखाएगा यदि वह एक तुच्छ प्रतिशोध के लिए अधर्म का सहारा लेगा?

तेरी सहायता से जय तो मैं अनायास पा जाऊँगा,
आने वाली मानवता को, लेकिन, क्या मुख दिखलाऊँगा?

कर्ण का यह निर्णय उसे केवल एक योद्धा से ऊँचा उठाकर एक 'महामानव' की श्रेणी में रख देता है। वह अवसरवादी नहीं है वह सिद्धांतों का पालन करने वाला सच्चा महामानव है जो समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना करता है ।

'रश्मिरथी' के कर्ण का विश्लेषण यदि आधुनिक मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में किया जाए तो वह 'संज्ञानात्मक विसंगति' और 'आत्म-मुग्धता' के बीच झूलता हुआ एक पात्र प्रतीत होता है । उसका पूरा जीवन बाहरी मान्यता की खोज में बीता। समाज ने उसे जिस हीनता के बोध से ग्रस्त किया उसे मिटाने के लिए उसने अपनी शक्ति और दानशीलता को ही अपना शस्त्र बनाया ।

एरिस्टोटल के 'हामार्शिया' के सिद्धांत के अनुसार, कर्ण एक ऐसा त्रासद नायक है जो अपनी विजय की इच्छा में कुछ ऐसे निर्णय लेता है जो अंततः उसके विनाश का कारण बनते हैं । उसकी दुर्योधन के प्रति अटूट वफादारी, अधर्म को जानते हुए भी उसका साथ देना और अपनी पहचान को लेकर उसकी व्याकुलता उसे एक अत्यंत जटिल चरित्र बनाती है। वह एक त्रासदी नायक' के रूप में उभरता है जो जाति व्यवस्था को चुनौती देता है । उसका पतन उसकी महानता और ईमानदारी के कारण होता है जो उसे एक उत्कृष्ट 'त्रासद नायक'सिद्ध करता है ।

दिनकर ने कर्ण को एक 'सक्रिय' नायक के रूप में चित्रित किया है जो केवल अपनी नियति पर रोता नहीं है बल्कि उसे बदलने के लिए संघर्ष करता है । 'रश्मिरथी' में कर्ण की पीड़ा केवल वैयक्तिक नहीं है बल्कि वह उन करोड़ों उपेक्षित मनुष्यों की पीड़ा है जिन्हें इतिहास ने हाशिए पर डाल दिया है।

***ये चार फूल है मोल किन्हीं, कातर नैनो के पानी के*,**
***ये चार फूल प्रच्छन्न दान है, किसी महाबल दानी के*,**
ये चार फूल मेरा अदृष्ट था, हुआ कभी जिनका कामी
***ये चार फूल प्रकार प्रसन्न**
हंसते होंगे अंतर्यामी* ।*

दिनकर की काव्य शैली 'वीर रस' की प्रधानता के साथ-साथ 'प्रौढ़ता' और 'गंभीरता' से ओत-प्रोत है। 'रश्मिरथी' की भाषा तत्सम प्रधान हिंदी है जो कर्ण के उदात्त चरित्र को चित्रित करने के लिए सर्वथा उपयुक्त है । "इतिवृत्तात्मकता", "अतिकल्पनाशीलता" और "वायवीयता" जैसे छायावादी दोषों से मुक्त होकर दिनकर ने एक ऐसी भाषा गढ़ी जो सीधे हृदय को स्पर्श करती है और पाठक के भीतर ओज का संचार करती है।

'रश्मिरथी' केवल एक पौराणिक काव्य नहीं है बल्कि यह स्वतंत्र भारत के निर्माण के समय की सामाजिक समस्याओं का एक साहित्यिक दस्तावेज है । 1952 का भारत जातिवाद, सामंतवाद और नव-स्वतंत्रता के बीच संघर्ष कर रहा था। दिनकर ने कर्ण के माध्यम से यह संदेश दिया कि राष्ट्र का निर्माण व्यक्तिगत गुणों और सामर्थ्य के आधार पर होना चाहिए न कि जन्म के आधार पर ।दिनकर की काव्य धमनियां संस्कृत और बंगला साहित्य से जुड़ी थीं जिसके कारण उनमें कालिदास की लालित्यपूर्ण भाषा और नज़रुल इस्लाम का विद्रोही स्वर एक साथ देखने को मिलता है । 'रश्मिरथी' की पंक्तियों में एक प्रकार की 'त्रिवेणी' बहती है, जहां परंपरा, आधुनिकता और क्रांति का अद्‌भुत संगम है।

रामधारी सिंह दिनकर की 'रश्मिरथी' हिंदी साहित्य की एक ऐसी धरोहर है जो समय की सीमाओं को पार कर चुकी है । कर्ण का चरित्र हमें यह सिखाता है कि मनुष्य अपनी परिस्थितियों का गुलाम नहीं है। वह अपने पुरुषार्थ, अपनी दृढ़ता और अपनी नैतिकता के बल पर अपनी नियति स्वयं लिख सकता है ।

कर्ण के जीवन की छह परीक्षायें वास्तव में मानवीय मूल्यों की वे कसौटियां हैं जिन पर हर युग के मनुष्य को परखा जाता है। 'रश्मिरथी' का संदेश अत्यंत स्पष्ट है - मनुष्य का मूल्य उसकी जाति या कुल से नही बल्कि उसके चरित्र और उसके कर्मों से परखा जाना चाहिए ।

आज के संदर्भ में, जब समाज पुनः विखंडन और पहचान की राजनीति की ओर बढ़ रहा है दिनकर का यह महाकाव्य हमें एक ऐसी 'रश्मि' या पुण्य के प्रकाश की ओर ले जाता है जहां केवल मानवीय गुण ही सर्वोपरि हैं । कर्ण न केवल एक ऐतिहासिक या

पौराणिक पात्र है बल्कि वह मानवीय गरिमा और स्वाभिमान का वह प्रतीक है जो युगों-युगों तक आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करता रहेगा। दिनकर की यह ओजस्वी रचना भारतीय राष्ट्रीय चेतना का वह 'सिंहनाद' है जो अन्याय के विरुद्ध सदैव गूंजता रहेगा ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामधारी सिंह दिनकर-रश्मिरथी
2. सावित्री सिन्हा- दिनकर जीवनी और व्यक्तित्व पृष्ठ- 112
3. दिनकर- मिट्टी की ओर पृष्ठ- 203
4. रामधारी सिंह दिनकर- रश्मिरथी की भूमिका, लोक भारती प्रकाशन प्रयागराज
5. सावित्री सिंह- दिनकर, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली तृतीय संस्करण पृष्ठ 13
6. रामधारी सिंह दिनकर- रश्मिरथी,प्रथम सर्ग
7. रामधारी सिंह दिनकर- दिनकर की डायरी पृष्ठ 109